



साठोत्तरी महिला कथाकारों की कहानियों में सामाजिक सन्दर्भों का अनुशीलन

शोधपत्र-हिन्दी

* डॉ. अंजू

भारतीय आजादी का मोहक स्वप्न सन् साठ तक पहुँचते-पहुँचते पूर्ण रूप से भंग हो चुका था। सन् साठ के बाद आम जन के मन को एक ही प्रश्न बेचैन किए था कि भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हमने क्या पाया? साम्प्रदायिक तनाव, युद्ध, महँगाई, बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार ने आम जन की कमर तोड़ दी। असंतोष, छटपटाहट, होड़, संघर्ष का वातावरण बना जिसने महिलाओं को अन्दर ही अन्दर आन्दोलित किया। आर्थिक दबावों के कारण महिलाएँ काम की खोज में घर से बाहर निकलने लगीं, जिससे उनका पारिवारिक जीवन भी प्रभावित हुआ। नयी-नयी स्थितियाँ, नयी-नयी समस्याएँ लेकर सामने आने लगीं। नारी की बदलती सामाजिक स्थिति के परिणामस्वरूप उसकी समस्याओं और उपलब्धियों दोनों से उसका साक्षत्कार हुआ। साथ ही उसने वर्तमान व्यवस्था में व्यक्ति के ऊपर बढ़ते दबावों को महसूस किया जिसका दूरगामी प्रभाव महिला कथाकारों पर पड़ा। महिला कथाकारों ने जीवन के सभी सन्दर्भों और प्रसंगों, समस्याओं और विसंगतियों को जीवन्तता के साथ अभिव्यक्त किया है। महिला कथाकारों के लिए कहानी मनोविनोद का साधन न रहकर जीवन को पूरी प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का माध्यम है। “लेखिकाओं की एक बड़ी संख्या एक बार फिर लेखन के माध्यम से पहचान खोज रही है, यह बात अपने आप में ही किसी बड़े बदलाव की द्योतक है। सिम्मि हर्षिता, इन्दुबाली, अरूणा सीतेश, प्रतिमा वर्मा, चन्द्रकान्ता आदि इस समवेत के व्यक्ति स्वर हैं। उनका अन्तर रचनात्मक कौशल के विविध स्तरों का अन्तर है, दृष्टि का अन्तर नहीं। इस समवेत में अलग उठ आने वाले और अलग सुनाई देने वाले स्वर भी हैं। दोनों के बीच अलगाव का स्वर भाव की सीधी अभिव्यक्ति के मुकाबले रूपगठन के प्रति सजगता का है।”¹

साठोत्तर दौर में रामदरश मिश्र, रमेश बक्षी, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर आदि कथाकारों ने सामाजिक चिन्ताओं से युक्त होकर आज के सम्पूर्ण परिवेश को पूरी सच्चाई के साथ अंकित किया है। मध्यवर्ग की टूटती परम्पराएँ, बदलते संबंध, टूटते मूल्यों की पीड़ा, आम आदमी

के संघर्ष को कहानी के रचनात्मक धरातल पर विसंगतियों के साथ परत-दर-परत उधेड़ते हुए खोला है। साठोत्तरी महिला कथाकारों में मौलिकता सृजनात्मकता गहन वैचारिक और भावानात्मक अनुभवों की बेबाक अभिव्यक्ति में दृष्टिकोण का यत्किंचित् अन्तर दिखलाई पड़ जाता है। मधुरेश जी ने इस विषय में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, “इसीलिए इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि पुरुष कहानीकारों की अपेक्षा इधर जो कहानी लेखिकाएँ उभरी है वे कहीं अधिक आश्वस्त करती हैं। और इसका एक बड़ा स्वाभाविक कारण यह है कि वे प्रायः ही चमत्कारों की संकरी पगडंडियों से बचकर वही लिखती हैं जो उनके जीवन और अनुभूतियों का भाग है। उनका आग्रह तथाकथित शिल्प के प्रति न होकर कथ्य के प्रति होता है। अतः वे जो कुछ सोचती और महसूस करती हैं उसे प्रभावशाली ढंग से अंकित कर पाती हैं।”²

सन् साठ के आस-पास से भारतीय समाज की संरचना में व्यापक परिवर्तन आरम्भ हो जाते हैं और इन परिवर्तनों की बहुत निर्व्याज और बेलाग अभिव्यक्ति बड़ी सूक्ष्मता है और गहराई के साथ साठोत्तरी हिन्दी कहानी में उभरने लगती हैं। इसलिए सन् साठ के बाद का समय भारतीय समाज की धड़कनों को नये ढंग से प्रकट करने के साथ-साथ हिन्दी कहानी के परिवर्तनमान रूप को प्रकट करता है। साठोत्तरी महिला कथाकारों ने यथार्थ की खोज करते समय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अस्पर्शित प्रसंगों एवं स्थितियों को पूरी ईमानदारी से चित्रित किया है। सामान्य मनुष्य की जीने की विषम आर्थिक स्थितियाँ, नैतिक मूल्यों का विघटन, प्रेम और सेक्स का नवीन भाव-बोध, नारी में आधुनिकता और परम्परा का द्वन्द्व, स्त्री-पुरुषों के संबंधों में बदलाव, आत्मीय संबंधों पर अर्थतंत्र का दबाव आदि सभी आयामों को समय की समस्त सच्चाइयों के साथ उद्घाटित किया गया है। साठोत्तर काल में आए परिवर्तनों का सीधा प्रभाव शिक्षित मध्यवर्गीय महिलाओं पर अधिक पड़ा। आर्थिक आवश्यकताओं ने नारी का नौकरी करना पुरुष के लिए आवश्यक-सा बना दिया। डॉ. प्रोमिला कपूर ने लिखा भी है कि “आज की आर्थिक कठिनाइयों की

वजह से विवाहित स्त्रियों द्वारा नौकरी करने से सम्बन्धित सामाजिक दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है.....बड़े-बूढ़े भी चाहने लगे हैं कि उनकी बहुएँ परिवार की आमदनी में योगदान दें।⁵ साठोत्तरी महिला कथाकारों ने नारी के इस बदलते चरित्र का अंकन किया है। प्रतिमा वर्मा की 'राख', ममता कालिया की 'दर्पण' और कृष्णा अग्निहोत्री की 'गाउन' कहानियों की नायिकाएँ स्वयं धन अर्जित करती हैं, फिर भी वह उनके लिए नहीं है। दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'तपिश के बाद' में ऐसी नौकरीपेशा पत्नियों के व्यवहार के महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित किया जो चाहती हैं कि जब वह पति आर्थिक दायित्वों में हाथ बँटाती है तो पति को भी उसके कामों में साझेदारी निभानी चाहिए। आज नगरों, महानगरों सभी जगह महिलाओं में विवाह के प्रति अरुचि उत्पन्न होने लगी है। जिससे उनमें अकेलेपन की समस्या बढ़ती जा रही है। उषा प्रियंवदा की 'संबंध' और राजी सेठ की 'योग-दीक्षा' कहानियों की नायिकाएँ पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण विवाह नहीं कर पाती और अकेलेपन की व्यथा को झेलती हैं। निरुपमा सेवती की 'टुच्चा' कहानी की परिवार के प्रति समर्पित नायिका को अपनों के बीच भी लगता है कि उसके सामने सभी कुछ शून्य होता जा रहा है। जिन्दगी एक अनाम प्रार्थना के समान बन गयी है, "कहीं कुछ भी नहीं है। शायद जिंदगी एक लम्बी प्रार्थना के सिवा कुछ भी नहीं है। और उसे लगा था, शहर की कई आवाजें मिलकर उसकी उसी अनाम प्रार्थना में शामिल हो रही हैं।"¹⁴

साठोत्तर काल में शिक्षा का प्रसार होने से पति-पत्नी संबंधों के पुराने मूल्यों को अस्वीकार किया गया है। दाम्पत्य जीवन की असफलता के पीछे पति-पत्नी के अहं की टकराहट या कहीं आर्थिक परिस्थितियाँ, आपसी अविश्वास, महत्वाकांक्षाएँ जैसे अनेक कारण होते हैं। मन्नु भंडारी की 'ऊँचाई', 'बाँहों का घेरा', 'बंद दरवाजों का साथ' में पति-पत्नी के बदलते संबंधों और तनाव को अंकित किया गया है। मेहरुत्रिसा परवेज की 'खामोशी की आवाज' की अनु को अपने पति रमेश के साथ जीना कष्टपूर्ण लगता है तो दूसरी तरफ रमेश को लगता है कि वहीं तो कमाकर पत्नी का खर्च चलता है। मृदुला गर्ग ने अपनी अधिकांश कहानियों में सेक्स के जटिल संबंधों का चित्रण किया है। 'अवकाश' कहानी की नायिका दो बच्चों की माँ होने पर भी पति महेश को छोड़कर 'समीर' के साथ रहना चाहती है। आज स्त्री-पुरुष दोनों समाज में परस्पर मिलकर कार्य करने लगे हैं। इसके कारण उनमें विवाहपूर्ण और विवाहोपरान्त प्रेम संबंध उभरकर सामने आए हैं। साठोत्तरी कहानी के अन्तर्गत प्रेम के यथार्थ अंकन के संबंध में डॉ. साधना शाह का वक्तव्य सर्वथा सही है कि, 'समकालीन

कहानी के उभरे पात्र सेक्स के स्तर पर एकदम खुले और स्वतंत्र है.... पवित्रता, अपवित्रता, नैतिकता-अनैतिकता की धारणा से मेल नहीं खाती।⁵ निरुपमा सेवती की⁶ शायद हाँ, शायद नहीं' और मन्नु भण्डारी की 'स्त्री सुबोधिनी' की नायिकाएँ प्रेम में धोखा खाती हैं।

मणिका मोहिनी की 'अनलकी नम्बर' कहानी की प्रेमिका आजाद ख्यालों की आधुनिक नारी है जिसके लिए प्रेम एक खेल है। मृदुला गर्ग की 'खरीददार' में नायिका विवाह के बिना अपने मनचाहे प्रेमी को खरीदकर शारीरिक भूख मिटा लेती है। इन कहानियों में युग-युग से नारी को विवाह के पवित्र बंधन के नाम पर शोषित करने और जरखरीद गुलाम की तरह रखने के प्रति एक आक्रोश और विवाह-संस्था को समाप्त करने की बड़ी प्रबल आन्दोलनपूर्ण दृष्टि व्यक्त हुई है। मृदुला गर्ग की 'तुक' कहानी विवाह और प्रेम को पूर्ण असंगत और व्यर्थ सिद्ध करती है। सिम्मी हर्षिता की 'चक्रभोग' कहानी में विवाह और मातृत्व के प्रति ऐसी ही विरक्ति इस प्रकार प्रकट होती है, 'पर बच्चे-कच्चे कौन पैदा करेगा? हर वक्त पिन्-पिन्।

किसी से पाले-पोसे उधार ले लूँगी।' 'ममता कालिया की किशोरी मन की साध' कहानी में लड़की की विवाह के प्रति ललक का उल्टा रूप मिलता है कि दो वर्ष से इसलिए दसवीं में फेल हो रही है कि पास होते ही उसका विवाह कर दिया जायेगा। साठोत्तर हिन्दी कहानी में मूल्यों की दृष्टि से पुराने आदर्शों के प्रति वितृष्णा है। कहानियों में प्रायः परम्परागत मान्यताओं व नैतिक मूल्यों पर निर्मम प्रहार है। क्योंकि साहित्य सदैव मानव मूल्यों तथा नवीन संवेदनाओं को महत्त्व देता है। नये वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्यों का विकास में सहायक होते हैं। नये-पुराने के वैचारिक संघर्ष में सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक मूल्य टूट रहे हैं। वैचारिक द्वन्द्व परम्परागत मूल्यों के परिवर्तन का कारण बना है। मन्नु भण्डारी मानव जीवन की सहज, स्वाभाविक, इच्छाओं को झुठलाने वाले बंधन नहीं स्वीकारती। इनकी 'ईसा के घर इंसान' कहानी में युवा अध्यापिका एंजिला पादरियों द्वारा किए गए अमानवीय कुकृत्यों के विरुद्ध कहती हैं, "मैं घुट-घुटकर नहीं मरूँगी, मुझे कोई नहीं रोक सकता जहाँ मेरा मन होगा मैं जाऊँगी मैंने तुम्हारे फादर.... अब वे ऐसी बात नहीं करेंगे।"⁷ यहाँ एंजिला इस कथन के माध्यम से धर्म के अनैतिक, अमानवीय जीर्ण-शीर्ण रूप का पर्दाफाश किया गया है। वहीं उषा प्रियंवदा की 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी की नायिका तलाक प्राप्त करने के पश्चात् कहती है- "एक मीनिंगलेस-सी रस्म में हमें बाँध दिया था।" दीप्ति खण्डेलवाल की निर्बन्ध कहानी में तीन पीढ़ियों के विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण के बदलाव को बेटी, माँ तथा नानी की

पीढ़ियों के बीच विश्लेषित किया गया है। साठोत्तरी महिला कथाकारों ने अपनी कहानियों में इसे सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। सूर्यबाला की “गुजरती हदें” कहानी में अन्तर्जातीय बल्कि अन्तर्देशीय विवाह के संबंध में बदलते दृष्टिकोण को चित्रित किया गया है। कहानी को नायक विनय अमेरिका में रहते हुए एलिस नामक युवती से विवाह कर लेता है। इस विवाह को उसकी परम्परावादी माँ अस्वीकार कर देती है। ‘माँ ने लिखवा दिया था- समझ ले तेरी माँ मर गई।’⁸

किन्तु वही माँ समयान्तर में इस विवाह को स्वीकृति दे देती है और कहती हैं, “तु ले तो आ, मैं उसे आँखों की पुतली-सी सहेज कर रखूँगी, ... यहाँ भी तो जमाना बदल गया। रोशनलाल के बेटे ने भी तो जात-बाहर शादी की है.... इधर से ही तो निकलता है फटफटी (स्कूटर) पर अपनी बीवी बिठाये...तुझे काहे की सरस....।”⁹ साठोत्तरी महिला कथाकारों ने ‘सत्य’ तथा ‘ईमानदारी’ जैसे मूल्यों के समाप्त हो जाने को अनेक कहानियों में रेखांकित किया है। सुधा अरोड़ा की ‘दमनचक्र’ का दामू अपने पिता के ईमानदारी के आदर्श की खिल्ली उड़ता है, “बाबा, आपका जमाना गया। लात खा लो, चुप रहो।... आपने बहुत ईमानदारी से काम किया न, क्या दिया हमें?”¹⁰

सूर्यबाला की ‘निर्वासित’, मालती जोशी की ‘बुआजी’ व ‘अनुबंध’ तथा उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’ आदि कहानियाँ श्रद्धा-सम्मान आदि के टूटने की गवाही देती हैं। ‘शिवानी ने ‘विप्रलब्धा’ कहानी में पारिवारिक विघटन के विषय में लिखा है, “सम्मिलित परिवारों के खोखले घरोंदे कब के ढह चुके हैं जो एक आध, नये युग के भूकम्प के गहरे धक्के को सहकर भी खड़े रह पाये हैं, उनमें न जाने कितने बंदी शाहजहाँ, अश्रुपूरित नयनों से अपनी गृहस्थी के उजड़ते ताजमहल को विवशता से हाथ बाँधे देख रहे हैं। उन्हीं के सुखी परिवार में जहाँ तिल का एक-एक दाना भी बाँटकर खाया जाता था, वैमनस्य की चिनगारी ने भाई-भाई को खून का प्यासा बना दिया है। आज घर-घर में दारा, मुराद, और औरंगजेब है.....।”¹¹

उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’ मेहरून्निसा परवेज की ‘उसका घर’ और सूर्यबाला की ‘बाऊजी और बन्दर’ कहानियों में यही सवाल उठाया गया है कि क्या उम्र आदमी को इतना गया-गुजरा बना देती है कि वो उपेक्षित रहे या उनके इस्तेमाल की बात सोचने लगे--? इन कहानियों के चित्रित वृद्धों की दयनीय दशा के विषय में विजया वारद ने लिखा है, “‘वापसी’ के गजाधर बाबू और ‘उसका घर’ का बापू एक ही स्थिति के शिकार हैं। अपने खून पसीने से सौंचकर जिस घर को, बेटों को उन्होंने पढ़ाया- लिखाया वे ही उनकी सर्वाधिक उपेक्षा करने लगते हैं। आधुनिक युग में बूढ़ों की स्थिति कितनी दयनीय होती जा रही है इसका चित्रण यह कहानी करती है।”¹² दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी ‘एक और कब्र में’ पीढ़ियों का अन्तर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है, इसके साथ ही नई पीढ़ी की उद्वण्डता और पुरानी पीढ़ी के प्रति अवज्ञा का भाव दिखलाई देता है। गुप्ताजी से उनका छोटा लड़का पूछता है- “पैदा करना आपकी जिम्मेदारी थी, पैदा होना हमारी जिम्मेदारी थी क्या.....? गुप्ताजी का पितृत्व यह सुनकर आहत होता है। मालती जोशी कृत ‘कोख का दर्प’, ‘उसने नहीं कहा’, ‘साथी’ जैसी कुछ कहानियों में यत्र-तत्र एवं पिता-पुत्र तथा सास-ससुर और बहु की दो पीढ़ियों के आचार विचार एवं संस्कार विषयक अन्तराल की समस्या चित्रित हुई है।’ राजी सेठ की कहानी ‘किसका इतिहास’ में पुत्र को पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करना, उनकी पीड़ा को समझने की कोशिश नहीं करना दोनों पीढ़ियों के विचारों में अन्तर को स्पष्ट करता है।

निष्कर्ष: साठोत्तरी महिला कथाकारों की कहानियों में सामाजिक संदर्भों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि इनकी कहानियों की सबसे बड़ी पहचान कहानियों में बदलती संवेदना में पैठ कर सही निरूपण करना है। बदलते जीवन-मूल्य व परिवर्तित विचार-भूमियों का सम्मिलित प्रभाव संवेदना के इस बदलाव का जीवन्त चित्र उभरता है। ये कहानियाँ सामयिक जीवन के खोखलेपन का पर्दाफाश करती हैं और शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण उत्पन्न हुई अमानवीयता को बेनकाब करती हैं। यह महिला कथाकारों की सजगता का परिचायक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रामदरश मिश्र- हिन्दी कहानी: अन्तरंग पहचान, पृ. 143
2. मधुरेश- हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश, पृ. 86-87
3. प्रेमिला कपूर- कामकाजी भारतीय नारी, पृ. 37
4. निरूपमा सेवती- टुच्चा- कहानी की दस्तक, पृ. 36
5. साधना शाह- नई कहानी में आधुनिकता बोध, पृ. 88
6. सिम्मी हर्षिता- चक्रभोग- कमरे में बंद आभास, पृ. 52
7. मन्नु भंडारी- ईसा के घर ईसान- मैं हार गई, पृ. 25
8. सूर्यबाला- गुजरती हदें- दिशाहीन- मैं, पृ. 22
9. सूर्यबाला- गुजरती हदें- दिशाहीन- मैं, पृ. 25-26
10. सुधा अरोड़ा- दमनचक्र- काला शुकवार, पृ. 72
11. शिवानी- विप्रलब्धा- पुष्पहार, पृ. 124
12. विजया वारद- साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ, पृ. 137